Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 2 | ISSUE : 10 | OCT 2016

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन प्रबन्ध

डॉ॰ कमलाकान्त सिंह [1]

[1] प्राचार्य, इतिहास, विभाग शिवपूजन शास्त्री समता महाविद्यालय, दिनारा (रोहतास), वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

ABSTRACT

Keywords:

चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत को राजनीतिक एकता प्रदान कर एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया। उसने इस विशाल साम्राज्य की सुरक्षा एवं अपनी प्रजा की सुख–सुविधा के लिए उच्च कोटि की शासन व्यवस्था की भी स्थापना की। कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं मेगास्थनीज की इण्डिका से उसके प्रशासकीय प्रणाली का विवरण मिलता है। उसने एक शक्तिशाली केन्द्रीय प्रशासन की स्थापना की थी जिसमें प्रान्तीय, स्थानीय एवं ग्रामीण प्रशासन को भी महत्व दिया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र सम्राट अशोक ने भी कुछ संशोधनों के साथ इसी शासन प्रणाली को अपनाया था। उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की सक्षम शासन प्रणाली का ही लगभग 2000 वर्ष बाद भी अँग्रेजों ने लगभग उसी रूप में भारत में प्रतिस्थापित किया था।[1]

राजा–चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था, अतः उसके द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था में राज्य का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी राजा होता था। वह समस्त शासन का केन्द्र था, फिर भी वह निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी नहीं होता था। वह अपने अधिकारों का प्रयोग अपने मंत्रियों की सलाह से राज्य धर्म का पालन करते हुए अपनी सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति को ध्यान में रखकर करता था। यद्यपि मंत्रियों के परामर्श से ही शासन सम्बन्धी कार्यों का निष्पादन करता था। राजा के प्रमुखतः तीन कर्तव्य थे–शासन सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी व सैनिक। शासक की हैसियत से वह राज्य के अधिकारियों की नियुक्ति करता, अर्थ विभाग के कागजों को देखता, विदेशी राजदूतों से विचार–विमर्श करता एवं अपने राजदूत अन्य देशों को भेजता, गुप्तचरों द्वारा राज्य के सम्बन्ध में विभिन्न विवरण सुनता तथा प्रजा व राजकीय अधिकारियों को आदेश भेजता था। न्यायाधीश के रूप में देश का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते अपनी सभा में नीचे के न्यायालयों से आये हुए मामलों का निर्णय देता था। प्रजा से सीधे आवेदन भी स्वीकार करता था। सैनिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए वह युद्ध के समय स्वयं सेना का संचालन करता तथा शान्ति के समय सैन्य संगठन व साम्राज्य की सुरक्षा की व्यवस्था करता था। राजा अपने इन कर्तव्यों को पूरा करने में दिन–रात लगा रहता था। उसके दिन और रात के काम आठ भागों में बँटे होते थे। और उसे विधिवत प्रत्यक समय प्रत्येक कार्य को पूरा करना होता था।

मंत्रिसभा तथा मंत्रिपरिषद–चन्द्रगुप्त का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत था। अतः इस विस्तृत साम्राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाना अकेले राजा के लिए संभव नहीं था। अतः उसकी सहायता के लिए दो सभायें–मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद होती थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है–''सम्प्रभुता (राज्यसत्ता का उपयोग) केवल सहायता से संभव है।'' वह आगे लिखता है–''राज्य रूपी रथ एक पहिये के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिये के रूप में उसे मंत्रिसभा और मंत्रिपरिषद् की आवश्यकता होती है।'' तात्पर्य यह कि मंत्रियों की ये सभायें आवश्यक ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली भी होती थी।

मंत्रिसभा के सदस्यों की संख्या तीन से बारह तक होती थी। मंत्रिसभा के सदस्यों की नियुक्ति कुल अथवा किसी अन्य प्रभाव से प्रेरित होकर नहीं बल्कि पूर्णतः योग्यता के आधार पर राजा द्वारा की जाती थी। कभी–कभी इन्हीं में से किसी एक को मुख्य अथवा प्रधानमंत्री भी बनाया जा सकता था। प्रत्येक मंत्री किसी एक विभाग का प्रधान होता था परन्तु राजा को वे सम्मिलित रूप से ही परामर्श दते थे। मंत्रिसभा में ही सर्वप्रथम किसी महत्वपूर्ण विषय पर विचार किया जाता था।

मंत्रिपरिषद एक बड़ी परिषद थी जिसमें 12, 16 अथवा 20 सदस्य होते थे। मंत्रिपरिषद के सदस्य भी राजा द्वारा ही नियुक्त किये जाते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है, ''राजा उन व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त करेगा जो उच्च कुल में उत्पन्न हुए हों, वीर, बुद्धिमान, ईमानदार व स्वामिभक्त हो।'' मंत्रिपरिषद के सदस्यों के सम्बन्ध में कौटिल्य का विचार था कि राज्य की आवश्यकता के अनुसार ही मंत्रियों की नियुक्ति की जानी चाहिए। मंत्रिपरिषद के सदस्यों का भी मुख्य कार्य राजा को सलाह देना था। यद्यपि राजा इस सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था परन्तु सामान्यतः वह मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करता था। मंत्रिपरिषद की कार्यवाही को गुप्त रखा जाता था। इसके सदस्यों का वेतन 12 हजार पण प्रतिवर्ष होता था। मंत्रिपरिषद की बैठक जिस भवन में होती थी उसे मंत्रभूमि कहा जाता था।

राजा साधारण तौर पर मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद की सलाह से ही कार्य करता था। अत्यावश्यक विषयों पर राजा मंत्रिसभा से परामर्श करता था, तत्पश्चात् मंत्रिपरिषद की बैठक बुलायी जाती थी। मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद में जो तथ्य ज्ञात नहीं है उन्हें जानने, जो ज्ञात है उन्हें यथार्थ रूप से निश्चित करने, संदेहास्पद विषयों के संदेह को दूर करने तथा जो विषय आंशिक रूप से ज्ञात हों उन्हें पूर्ण रूप से जानने का कार्य सम्पादित होता था। इनमें बहुमत द्वारा लिये गये निर्णय को ही राजा द्वारा स्वीकार किया जाता था। यदि राजा को वह निर्णय उचित प्रतीत नहीं होता था तभी वह अपने बुद्धि व विवेक द्वारा उचित निर्णय लेता था। अनुपस्थित मंत्रियों की सलाह पत्र द्वारा ली जाती थी। इस प्रकार मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद औपचारिक संस्थाएँ मात्र नहीं थी बल्कि वे अत्यन्त क्रियाशील थी। डॉ॰ मजुमदार ने मौर्यकालीन मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए कहा है ''यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत में भी शासन संस्थाओं का विकास इंग्लैण्ड के ही सदृश हुआ है। जिस प्रकार अँग्रेजों की नेशनल कौन्सिल से परमानेन्ट कौन्सिल का प्रादुर्भाव हुआ और वही कालान्तर में प्रिवी कौन्सिल के रूप में परिणत हो गयी, इसी प्रिवी कौन्सिल से राजा अपने विश्वस्त मंत्रियों को चुनते रहे और मंत्रिपरिषद का निर्माण हुआ, इसी प्रकार भारत में भी वैदिक काल की समिति बाद में मंत्रिपरिषद के रूप में परिणत हो गयी और उसी परिषद से राजा अपने मंत्रियों को चुनते रहे।''[2]

विभागीय व्यवस्था–राजा मंत्रिसभा एवं मंत्रिपरिषद की सलाह से नीतियों का निर्धारण करता था। इन नीतियों का क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व नौकरशाही पर था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित थी तथा विशाल साम्राज्य के प्रशासनिक कार्यों को सुगमतापूर्वक करती थी। प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर मौर्य काल में विभिनन विभागों की स्थापना की गयी थी जिन्हें तीर्थ कहा जाता था। प्रत्येक विभाग के संचालन के लिए एक अध्यक्ष होता था जिसे अमात्य कहा जाता था। प्रत्येक विभाग के अनेक उपविभाग होते थे जिसके अधिकारी अमात्य के निर्देशन में कार्य करते थे। अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों का उल्लेख है जिसका विवरण निम्नवत है–

मंत्री एवं पुरोहित–ये दोनों पद अलग–अलग थे परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में इन दोनों पदों पर चाणक्य ही आसीन था। इसके द्वारा वैदेशिक नीति, गुप्तचरों की नियुक्ति, शिक्षा व्यवस्था, धार्मिक कार्य आदि सम्पादित किये जाते थे। यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसके परामर्श से ही अन्य विभागों के अध्यक्षों की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी।[3]

समाहर्त्ता–समाहर्त्ता जनपद का शासन संचालित करनेवाला अधिकारी था। इसका प्रमुख कार्य राज्य कर को एकत्रित करना था।

सन्निधाता–राजकोष के सर्वोच्च अधिकारी को सन्निधाता कहा जाता था।

सेनापति–युद्ध विभाग का प्रधान सेनापति होता था। इसके लिए युद्ध नीति में निपुण होना आवश्यक था।

युवराज–यह राजा का पुत्र तथा भावी सम्राट होता था। इस नाते यह किसी विभाग का अमात्य बन सकता था।

प्रदेष्टा–कंटकशोधक न्यायालय के अमात्य को प्रदेष्टा कहा जाता था।

व्यावहारिक–धर्मस्थीय न्यायालय का अमात्य व्यावहारिक कहलाता था।

इसे धर्मस्थ भी कहा जाता था।

नायक–सैन्य संचालन का उत्तरदायित्व नायक पर होता था। युद्ध क्षेत्र मं यही सेना के आगे रहता था। इसकी देखरेख में ही छावनियों का निर्माण होता था।

कार्मान्तिक–उद्योग विभाग का अमात्य कार्मान्तिक कहलाता था।

मंत्रिपरिषदाध्यक्ष–यह मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष होता था और राजा को परामर्श देना इसका प्रमुख कार्य था।

दण्डपाल–सेना की सभी जरूरतों को पूरा करने का उत्तरदायित्व दण्डपाल पर होता था।

अन्तपाल–सीमा प्रान्त की सुरक्षा, वहाँ छावनियों की स्थापना आदि कार्यों का सम्पादन अन्तपाल द्वारा किया जाता था।

दुर्गपाल–साम्राज्य में स्थित दुर्गों की व्यवस्था दुर्गपाल करता था।

नागरिक–नगर के प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी नागरिक होता था। इसे पौर भी कहा जाता था।

प्रशास्ता–राजकीय आदेशों को लिपिबद्ध एवं सभी कागजों के विवरण को सुरक्षित रखनेवाले विभाग अक्षपटल का प्रधान अधिकारी प्रशास्ता होता था।[4]

दौवारिक–राजप्रासाद की सभी आवश्यकताओं को पूरा करनेवाले और उसकी सुरक्षा के लिए उत्तरदायी अधिकारी दौवारिक के नाम से जाना जाता था।

आन्तर्दशिका–राजा के अंगरक्षकों की सेना का प्रधान आन्तर्दशिका होता था। राजा और उसको अन्तःपुर की रक्षा उसका प्रमुख कार्य था।

आटविक–वन सेना के प्रधान को आटविक कहा जाता था।

इन अठारह तीर्थों के अमात्यों के अतिरिक्त अनेक छोटे–बड़े अधिकारी होते थे। इनमें खानों, सिक्के ढालने, नमक बनाने, राज्य व्यापार, जंगल शास्त्रागार, नाप–तौल, चुँगी, चारागाह, कृषि, व्यापार, बन्दरगाह की देखभाल आदि के लिए अन्य अधिकारी होते थे। इन अधिकारियों को सामान्यतः मुद्राओं में वेतन दिया जाता था। चाणक्य का विचार था कि राजा को कर्मचारियों की योग्यता को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर उनके वेतन मे वृद्धि करते रहना चाहिए। इसी कारण मौर्य राज कर्मचारियों को अच्छा वेतन प्राप्त होता था। मृत राजकर्मचारियों के आश्रितों का भी राजा द्वारा पूरा ध्यान रखा जाता था। मौर्य शासन अपनी नौकरशाही अत्यन्त विशाल एवं बड़ी संख्या में थी और वह देश के प्रत्येक आर्थिक ओर सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त थी।"[5]

REFERENCES

[1] राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ॰ 124

[2] भी॰ ए॰ स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ॰ 126

[3] राजबलि पाण्डेय, प्राचीन भारत, पृ॰ 159

[4] सैम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ॰ 19

[5] रमेशचन्द्र मजुमदार, कारपोरेट लाइफ इन एन्सिएन्ट इण्डिया, पृ॰ 128–129

Copyright© 2016, IESRJ. This open-access article is published under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License which permits Share (copy and redistribute the material in any medium or format) and Adapt (remix, transform, and build upon the material) under the Attribution-NonCommercial terms.